National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015; 1(1): 34-39
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 26-08-2015
Accepted: 31-08-2015

Dr. K.N.Shukla
Professor
Department of Sanskrit
RDVV, Jabalpur (M.P.)

Correspondence:

Dr. K.N.Shukla
Professor
Department of Sanskrit
RDVV, Jabalpur (M.P.)

कायिक चेष्टाओं द्वारा भावों का सम्प्रेषण

डॉ. कमलनयन शुक्ल

सामान्य रूप से परस्पर विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम को हम भाषा कहते हैं। भाषा समाज सापेक्ष वस्तु है इसी कारण मानव के साथ इसका अटूट सम्बन्ध हैं। विचार-विनिमय के समय हमारे विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति केवल ध्वनि संकेतों से ही नहीं होती, अपितु उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये ब्राह्य साधनों का भी सहयोग लेना पड़ता है। आज विचारों के सम्प्रेषण में सांकेतिक भाषाओं एवं कायिक चेष्टाओं को भी महत्वपूर्ण माना जा रहा हैं। संकेतों एवं स्वाभाविक कायिक चेष्टाओं से वाचिक शब्दों का अर्थ ही निश्चित नहीं होता बल्कि वह परिपुष्ट रूप से सम्प्रेषित होता है। इस प्रकार जिन अभिव्यक्तियों या अर्थों को शब्दों के माध्यम से नहीं प्रकट किया जा सकता उन्हें इंगितों अथवा आंगिक क्रियाओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता हैं।

सामान्य रूप से प्रत्येक सचेतन क्रियाशील होता है। इस कारण सभी प्राणियों के प्रत्येक क्रिया-कलापों में सुख अथवा दुःखादि को व्यक्त करने वाले हर्ष, करुणादि आन्तरिक भाव वाचिक एवं आंगिक चेष्टाओं द्वारा अभिव्यक्त होते रहते हैं। सामान्य मनुष्य सहज रूप से वाणी के साथ तदनुरूप कुछ न कुछ शारीरिक अंगों का भी संचालन करता है। उदाहरण के लिये क्रोध आने पर मनुष्यों की आँखों का लाल होना, नथुनों का फड़कना,, हस्तादि का संचालन अपने आप होने लगता है। इसी प्रकार अत्यधिक कष्ट में आँखों में आसूँ आना, हाथ-पैर पटकना, चीत्कार करना शीघ्रतापूर्वक करवटें बदलना इतयादि शारीरिक क्रियायें स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाती हैं। इन शारीरिक क्रियाओं द्वारा भावों का सम्प्रेषण आसानी से हो जाता है। अतिप्राचीन काल में जब मनुष्य की भाषा का आविर्भावकाल था तब निश्चय ही वह इन्हीं शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से ही अपना अधिकांश अभिप्राय व्यक्त करता था। अज्ञान भाषाभाषियों के बीच पहुँचने पर आज भी संकेतों द्वारा ही प्रथमतः भावों का आदान-प्रदान संभव होता है। मनुष्येतर जितने भी प्राणी हैं वे सभी सामान्य व्यवहार प्रायः अपनी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा ही व्यक्त करते हैं। सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो सभी प्राणियों के आहार, निद्रा, भय, हर्ष एवं मैथुनादि के समय की कायिक चेष्टाये समान होती हैं। इस दृष्टि से केवल मनुष्य अपितु मनुष्येतर सभी प्राणी अपनी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अपने भावों को व्यक्त करते हैं। इन्हीं शारीरिक क्रियाओं को भली-भाँति समझकर मनुष्य आज अन्य सभी प्राणियों को अपनी सुख-सुविधा एवं विकास का साधन बना लिया है। आज जबकि विश्व की सभी भाषाओं को समग्र रूप से समझने एवं जानने का प्रयास किया जा रहा है, सभी भाषाओं के लिए एक प्रकार के सार्वभौमिक शब्दानुशासन के बारे में सोचा जा रहा हे तब समग्र रूप से प्राणियों की इन शारीरिक अभिक्रियाओं अथवा चेष्टाओं का वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है। यद्यपि अपने देष में एवं अन्यत्र भी इस पर अध्ययन एवं शोध कार्य हो रहे हैं फिर भी सभी प्राणियों के हित-चिन्तन के लिये समग्रता से इस पर भाषावैज्ञानिक अध्ययन प्राथमिकता से किया जाना चाहिए। इससे न केवल मनुष्यों एवं उसके लिये उपयोगी पशु-पक्षियों के बीच एक सार्थक संवाद स्थापित होगा अपितु व्यापक रूप से पर्यावरण-सन्तुलन में मदद मिलेगी।

इस लघुकाय शोधपत्र में वाचिकेतर अथवा कायिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त होने वाले काव्यात्मक अर्थों एवं आह्लाद अनुभूतियों का निरूपण करना लक्ष्य है। इस विवेचन में लेख की प्रवृत्ति भाषा-वैज्ञानिक न होकर विशुद्ध रूप से काव्यपरक होगी। काव्य में मानवीय संवेदनाओं को वाणी के अतिरिक्त किसी प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है ? तथा इसके द्वारा काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप रसास्वाद कैसे प्राप्त होता है ? इसका प्रामाणिक निरूपण काव्य के माध्यम से व्यक्त करना समग्र लेख का प्रारंभिक सोपान होगा।

भारतीय काव्यषास्त्र में कायिक चेष्टाओं का निरूपण रस एवं अभिनय के सन्दर्भ में विषदता से किया गया है। इस के सन्दर्भ में इन्हें विभाव एवं अनुभाव के अन्तर्गत परिगणित करते हुये इसे रसोत्पत्ति में सहायक माना गया है। जैसा कि हम जानते है कि सामाजिक के हृदय में वासना रूप में अवस्थित रतिषोकादि भावों के जो उद्बोधक कारण हैं वे ही काव्यनाटकादि में वर्णित होकर विभाव कहे जाते हैं। वे विभाव आलम्बन एवं उद्दीपन भेद से दो प्रकार के होते हैं।

उदाहरण के लिये शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में उसके प्रति रति भाव जागरित हो जाने पर शकुन्तला को आलम्बन विभाव कहेंगे। इसी प्रकार दुष्यन्त की चेष्टाओं से यदि शकुन्तला में रति भाव जागरित हो जाता है तो दुष्यन्त को आलम्बन विभाव कहेंगे। इस प्रकार दोनों ही पात्र परस्पर आलम्बन एवं आश्रय द्वारा रतिभाव से युक्त हो जाता हैं।

रत्यादि स्थायी भावों को उद्दीप्त करके जो कारण उनकी आस्वाद योग्यता बढ़ाते हैं उन्हें हम उद्दीपन विभाव कहेंगे। ये दो प्रकार के होते है (1) आलम्बनगत वाह्यचेष्टायें (2) वाह्य वातावरण। उदाहरणार्थ श्रृङ्गाररस में दुष्यन्त के रतिभाव को उद्दीप्त करने वाली शकुन्तला की कटाक्ष-भुजाविक्षेप आदि वाह्य चेष्टायें उद्दीपन विभाव कही जायेंगी।

यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि आलम्बन विभाव के रूप में कायिक चेष्टायें सामाजिक के अंतर्गत स्थायी भावों को उद्बोधित करती हैं तथा उद्दीपन के रूप में ये ही चेष्टायें उद्बुद्ध हुये भावों को उत्तेजित करती हैं। इस प्रकार रसानुभूति में कायिक चेष्टाओं का महत्व विभाव के रूप में निर्विवाद है।

रत्यादि स्थायीभावों को प्रकाषित करने वाली आश्रय की वाह्य चेष्टायें अनुभाव कहलाती है। अनुभाव का शाब्दिक अर्थ है - भवमनु-अनुभावः अथवा अनुभावयन्ति इति अनुभावाः अर्थात् इन अनुभाव रूप वाह्यचेष्टाओं द्वारा ही सामाजिक रत्यादि का अनुभव करता है। इस प्रकार विरह-व्याकुल नायक द्वारा सिसकियाँ भरना, बाल नोचना, अपलक शून्य की ओर देखना इत्यादि वाह्य शारीरिक चेष्टायें अनुभावों के रूपा में काव्य-विश्रुत हैं।

ये अनुभाव चार प्रकार के होते हैं -

1. आङ्गिक - शरीर के अंगों द्वारा चेष्टा
2. वाचिक - वाणी द्वारा चेष्टा
3. आहार्य - वस्त्राभूषणों द्वारा चेष्टा
4. सात्विक - सात्विक भावों द्वारा चेष्टा

सत्व के योग से उत्पन्न होने वाली कायिक चेष्टायें आठ प्रकार की होती है। इन्हें सात्विकभाव भाव भी कहते हैं। ये स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभंग, वेपथु, वैवण्र्य, अश्रु एवं प्रलय हैं। प्रलय की स्थिति में आश्रय चेष्टाषून्य हो जाता है परन्तु प्रलय के विपरीत स्तम्भ की स्थिति में उसे अपनी चेष्टा-शून्यता का ज्ञान बना रहता है। स्तम्भ का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है -

देखि सीय सौम्य सुख पावा।
हृदय सराहत वचन न आवा।।
अधिक सनेह प्रीति भई भोरी।
सरद ससिहिं जिमि चितय चकोरी ।। रामचरित मानस, तुलसी

इस प्रकार काव्य में अर्थ-सम्प्रेषण की दृष्टि से अथवा काव्याह्लाद रूप रसानभूति की दृष्टि से इन कायिक चेष्टाओं का महत्व अतिषायी है।

कायिक चेष्टाओं का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। अवस्था के अनुकरण को ही हम नाट्य कहते हैं और अवस्था का यह अनुकरण चतुर्विध अभिनयों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। ये अभिनय पूर्णरूपेण अनुभावों के समान ही नाटक में वर्णित हैं -

1. **आंगिक अभिनय** - जो शरीर के अंगों द्वारा किया जाता है, उसे आंगिक या कायिक अभिनय कहते है। इसमें शरीर एवं उसके समस्त अवयवों द्वारा व्यञ्जित की जाने वाली मुद्राओं का समावेष किया जाता है इसके तीन भेद किये जा सकते हैं - शरीरज, मुखज और चेष्टाकृत।

2 **वाचिक अभिनय** - जो वाणी द्वारा किया जाय। इसके अन्तर्गत बोलने, पाठ करने तथा गेयादि का समावेष किया जाता है।

3. **आहार्य** - वस्त्राभूषणादि द्वारा जो अभिनय किया जाय उसे आहार्य कहते हैं।

4. **सात्विक अभिनय** - जो सात्विक भावों द्वारा व्यक्त किये जाते हैं उन्हें सात्विक अभिनय कहते हैं।

इस प्रकार नट इन चार प्रकार की चेष्टाओं द्वारा ऐसे परिवेश एवं वातावरण की सृष्टि कर देता है जिससे सामाजिक अनायास ही नाटक की भावभूमि पर पहुँचकर परमाह्लाद का अनुभव करता है। नाटक में इन कायिक चेष्टाओं के बीच परस्पर औचित्य आवष्यक हैं। जैसा कि कहा गया है -

वयोनुरूपः प्रथमस्तु वेषो, वेषानुरूपष्च गतिप्रचारः।
गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं पाठ्यानुरूपोऽभिनयष्चकार।। ना.शा.

नाट्यधर्मी एवं लोकधर्मी के रूपा में आंगिम अभिनयों को नाटक की सफलता में अनिवार्य माना है जैसा कि नाट्यशास्त्र का कथन है -

नाट्य धर्मीप्रवृतं हि सप्तनाट्यं प्रयोजयेत।
नाह्याभिनयात् किञ्चिद् ऋतु रागः प्रवर्तते।।
सर्वस्य सहजो भावः सर्वो ह्यभिनयोऽर्थतः।
अलङ्कारचेष्टा तु नाट्यधर्मी प्रकीर्तिता।।

इसी प्रकार नाट्यशास्त्र में पात्रों द्वारा किये जाने वाले व्यापार अथवा आंगिक चेष्टाओं को वृत्तियों के रूप में भी विवेचित किया गया है। नाटक में अपने भावों के सम्प्रेषण हेतु पात्रों द्वारा किये जाने वाले व्यापार को वृत्ति कहते है। नाट्य कहते हैं वचन तथा चेष्टा के सम्मिलन को, क्योंकि अभिनय में पात्र केवल यदि दो व्यापार प्रधानता से करता है। चेष्टा दो प्रकार की होती है आंगिक एवं मानसिक। पात्रों के इन्हीं वाचिक आंगिक एवं मानसिक व्यापारों को लक्ष्य में रखकर अभिनवगुप्त ने वृत्ति को प्रतिपादित किया है। तदनुसार शरीर, वचन तथा मन की विचित्रता से युक्त चेष्टायें वृत्तियाँ कहलाती हैं। (काव्याङ्गमनसा चेष्टा एवं सह वैचित्र्येण वत्यः) राजषेखर ने विलास-विन्यास-क्रम को वृत्ति की मूल भावना निरूपित किया है। उनहोंने वचन-विन्यास-क्रम को रीति तथा वेशविन्यास-क्रम को प्रवृत्ति के अन्तर्गत विवेचित किया है। इस प्रकार राजशेखर के अनुसार इसे निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

वृत्ति - विलासविन्यास-क्रम
रीति - वचनविन्यास-क्रम
प्रवृत्ति - वेशविन्यास-क्रम

पात्रों की चेष्टाओं के आधार पर वृत्तियों का त्रिविध विभाग किया गया जो निम्न है -

वाच्यचेष्टा से युक्त वृत्ति - भारती
आंगिक चेष्टाओं से युक्त वृत्ति - आरभटी
मानसिक चेष्टाओं से युक्त वृत्ति - सात्वती

प्रारम्भ में तीन ही वृत्तियां थी जिनका वर्गीकरण भावों की प्रधानता के आधार पर किया गया है। बाद में लालित्य एवं सुकुमार भावों पर आश्रित चेष्टाओं को कैशिकी वृत्ति के अन्तर्गत माना गया। इस प्रकार नाट्यशास्त्र में विषेषरूप से विवेचित इन वृत्तियों द्वारा भी कायिक चेष्टाओं का महत्वांकन किया गया है।
आधुनिक भाषा विज्ञान के अनुसार जिस माध्यम से विचारों अथवा भावों का संप्रेषण होता है उसे हम भाषा के अन्तर्गत मानते हैं। इस दृष्टि से संकेत प्रतीत एवं कायिक चेष्टाओं को भी गौण रूप से भाषा के अन्तर्गत ही रखकर अध्ययन किया जाता है। आधुनिक भाषा वािान के अनुरूप सम्प्रेषण दो माध्यमों से होता है -

(1) वाचिक
(2) वाचिकेतर

वाचिक के अन्तर्गत भाषा एवं पराभाषा का विवेचन किया जाता है।
वाचिकेतर को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है -
(1) कायिक (2) आहार्य (3) स्पर्ष (4) सामीप्य या नैकट्य।
सम्प्रेषण के इन माध्यमों को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं -

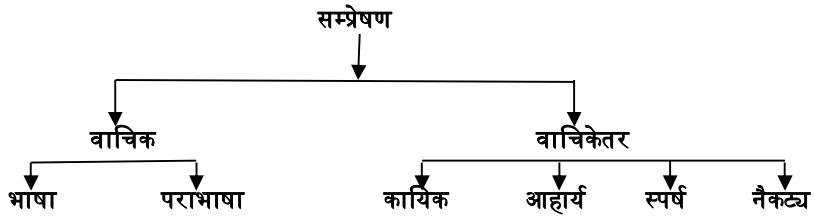

इस प्रकार उक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट है कि आधुनिक सम्प्रेषण में वाचिकेतर के अन्तर्गत जिन 4 माध्यमों का वर्णन हैं उन्हें हम अनुभाव एवं अभिनय द्वारा व्यक्त कर चुके हैं। आधुनिक भाषा विज्ञान में इनका निरूपण यथार्थ एवं वस्तुपरक ढंग से किया गया है जबकि प्राचीन साहित्यशास्त्र में इन्हें दृष्य अथवा श्रव्य रूप से समझने का गंभीरता से प्रयास किया गया हैं।
भारतीय साहित्य में काव्य को जो परमतत्व ध्वनि, व्यंग्य रस के रूप में माना जाता है उसे व्यक्त करने के लिये वाचिक माध्यम की अपेक्षा कवियों ने वाचिकेतर माध्यमों का ही आश्रय लिया है। इस दृष्टि से भारतीय काव्यशास्त्र हमेशा ही रस एवं भावादिकों को स्वशब्दवाच्य न मानने का हिमायती रहा है। इसके लिये प्रायः कवियों ने पात्रों की कायिक चेष्टायों को ही अपना आधार बनाया और इस प्रकार स्वाभाविक चेष्टा वाले काव्य प्रायः उŸाम कोटि में परिगणित किये गए। कायिक चेष्टाओं के माध्यम से किस प्रकार आनन्द अथवा भावों की अनुभूति होती है इसके लिये हिन्दी-संस्कृत के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

बतरस लालच लाल की, मुरली लई लुकाइ।
सौंह करें भौंहनु हँसे दैन कहे नाटि जाइ।। बिहारी सतसई

यहाँ मुरली-छिपाना, सौह करना, भौंहों से हँसना, वापस करने के लिये कहना और नट जाना इतयादि कायिक अनुभावों से सम्पूर्ण प्रसंग आँखों के सामने रमणीयता से उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार -

भौहनु त्रासतु मुँहनटति आँखिन सौ लपटात।
ऐंचि छुडावति कर उंची आगे आवत जात।। बिहारी सतसई

उक्त पद्य में केवल शारीरिक संकेतों का कवि ने मनोरम प्रयोग किया है जो भावों के सम्प्रेषण में पूर्णरूपेण समर्थ हैं। इसी सन्दर्भ में सुमित्रानन्दन पन्त का निम्न पद्य भी दर्शनीय हैं -

एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर सहज नीचे गिरे।
चपलता ने इस विकल्पित पुलक से
मानो किया मुझसे प्रणय संबन्ध था।

इस पद्य में स्वाभाविकता से आँखों की पलकों का ऊपर उठना एवं नीचे गिरना रूप नायिका की वाह्य चेष्टायें अन्य अर्थों का स्वतः आक्षेप

करके सम्पूर्ण पद्य को रसमय कर देती है।
इन्हीं कायिक चेष्टाओं के द्वारा बिहारी की नायिका भरे भवन में भी आँखों ही आँखों से अपनी समग्र भावनाओं का सम्प्रेषण कर देती है और किसी को पता भी नही चलता है।

कहत, नटत, रीझत, खिझत, हँसत, मिलत, लजियात।
भरे भवन में करत हैं आँखिन ही सों बात।। बिहारी सतसई

इसी प्रकार नवविवाहिता की शारीरिक चेष्टाओं द्वारा लज्जा को व्यक्त करने वाला निम्न पद्य की रमणीयता दर्शनीय है -

हस्ते धृताऽपि शयने विनिवेषताऽपि
क्रोडे कृतापि यतते वहिरेव गन्तुम्।
जानीमहे नववधूरथ तस्य वश्या
यः पारदं स्थिरयितु क्षमते करेण।। रसमंजरी

इसी प्रकार -

नखं नखाग्रेण विघट्टयन्ती
विवर्तयन्ती वलयं विलोलम्।
आमन्द्रमाशिञ्जित नूपूरेण
पादेन मन्दं भुवमालिखन्ती।।

जब नायिका के प्रियतम के सन्दर्भ में बात चली तो व नखों से नखों को छेदने लगी, हाथ में पहने हुये चंचल कंगनों को घुमाने लगी तथा मन्द मधुर झंकार करती हुयी नूपुर वाले पैरों से भूमि कुरेदने लगी।

इस पद्य में विभावानुभाव रूप शारीरिक अभिनय मात्र से लज्जा रूप का अनुभव सामाजिक अथवा पाठक सहजता से कर लेता है। इसी प्रकार लज्जा को व्यक्त करने के लिये प्रायः सभी महान् कवियों ने वाचिकेतर चेष्टाओं को ही अपनी लेखनी का आधार बनाया है। लज्जादि भावों की स्वषब्द वाच्यता बहुत कम देखने को मिलती है। इसी प्रकार शारीरिक चेष्टा के माध्यम से पार्वती की मर्यादित लज्जा भी द्रष्टव्य है -

एवं वादिनि देवर्षो पार्श्वेपितुरधोमुखी।
लीलाकमलपात्राणि गणयामास पार्वती।। कुमारसंभव

इस संदर्भ में कामायनी में व्यक्त 'लज्जा' को भी हम अनुभूत कर सकते हैं।

छूने में हिचक देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं।
कलरव परिहास भरी गूँजे अधरों तक सहसा रुकती हैं।

इन शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से केवल रति, शोक, हास इत्यादि भावों की ही नहीं अपितु रस की भी समग्रता से अनुभूति की जा सकती है इस सन्दर्भ में अमरुक का एक ही पद्य निदर्शन के लिये पर्याप्त होगा-

शून्यं वासगृहं विलोक्य सहसा उत्थाय किञ्चिच्छनैः
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विश्रब्धं परिचुम्ब्य जात पुलकामालोक्य गण्डस्थलीम्
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरंचुम्बिता।।

उद्धृत - साहित्यदर्पण प्रथम परिच्छेद

कायिक अभिनय के माध्यम से सम्प्रेषणीयता किसी सीमा तक जाकर सहृदय को आनन्द प्रदान करती है इसका मर्यादा पूर्ण उदाहरण रामचरित मानस में देखा जा सकता है -
श्रीराम चैदह वर्षीय वनवास के लिये माता कौशल्या से अनुमति माँगते हैं। इसी समय यह समाचार सुनकर व्याकुल सीता भी सास कौशल्या के पास आकर बैठ जाती हैं। रूपराशि सम्पन्न एवं पवित्र प्रेम करने वाली अपनी पुत्रवधु को देखकर कौशल्या व्याकुल हो जाती हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में प्रियतम श्री राम के साथ जाने के उत्कट इच्छावाली जानकी मर्यादा के कारण कुछ बोल नहीं पाती उस समय की उनकी शारीरिक चेष्टायें देखिये -

चारुचरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी।
मनहुँ प्रेमवष विनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं।।

अर्थात् सीताजी अपने सुन्दर चरणों के नखों से धरती कुरेद रही हैं ऐसा करते समय नूपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है कवि उसका इस प्रकार वर्णन कर रहा हैं मानों प्रेमवश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीताजी के चरण कभी हमारा त्याग न करें।
इस प्रकार सीता की उक्त स्वाभाविक चेष्टा से उनकी मर्यादित लज्जा तो अभिव्यक्त हो रही है इसके अतिरिक्त नूपुरों के माध्यम से कवि ने एक ओर प्रेमपूरित कल्पना का सर्जन कर दिया है। नूपुरों के बजने का अर्थ कही श्रृंगारिक न हो जाय इसलिये भक्त कवि ने सीता के चरणों के प्रति नूपुरों की अनन्यप्रेमाभक्ति को भी उत्प्रेक्षित कर दिया। इस कथन की सम्प्रेषणीयता यही पर समाप्त नहीं होती अपितु इसके आगे भी आह्लाद को उत्पन्न करती हैं। नूपुरों के सामने श्रीराम तपस्वी वेष में खड़े हैं, उन्होंने अपने सारे आभूषणों का परित्याग कर दिया है ऐसे में पतिवत्र्मगामिनी सीता कहीं उनका परित्याग न कर दें इसलिए सीता-चरणों के अनन्य प्रेमी नूपुरों की यह मार्मिक उक्ति सार्थक हो जाती है।

रामचरित मानस के ही एक अन्य प्रसंग में जब गाँव की स्त्रियाँ अत्यन्त सकुचाते हुये सीता से राम एवं लक्ष्मण के बारे में पूँछती हैं तब सीता की कायिक चेष्टाओं की स्थिति देखिये -

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी।
दुहुँ सकोच सकुचत वर वरनी।।
समुचि सप्रेम बाल मृग नयनी।
बोली मधुर वचन पिक बयनी।।
सहज स्वभाव सुलभ तनु गोरे।
नामलखनु लघु देवर मोरे।।

और फिर -

बहुरि बदन विधु अंचल ढांकी।
पिय तनु चितइ भौंह करि बाँकी।।
खञ्जन मञ्जे तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।। रामचरित मानस

इस प्रकार इन शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से कवि उन मर्यादाओं को व्यक्त करने में सफल हो जाता है जिन मर्यादाओं की रक्षा वह वाचिक व्यवहार से कथमपि नही कर पाता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका शकुन्तला नायक के प्रति अपने प्राथमिक अनुराग को अपनी श्रृंगारिक चेष्टाओं के द्वारा ही क्रमशः अभिव्यक्त करती है। प्रारंभ में वह दुष्यन्त की बातों में अपनी बात नही मिलाती थी किन्तु दुष्यन्त के बोलने पर वह कान लगाकर अर्थात् ध्यान से सुनती थी यद्यपि वह दुष्यन्त की नजरों से अपनी नजर नही मिला रही थी फिर भी उसकी दृष्टि अन्यत्र कहीं नही संलग्न थी। इस प्रकार की चेष्टाओं द्वारा वह दुष्यन्त से अपनी कामभावना को सहज रूप से व्यक्त करती है। दुष्यन्त स्वयं इसका अनुमान करता है -

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदानन संमुखीयम्
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।। आ.शा. 1/28

इतना ही नही शकुन्तला की उसके बाद की सम्पूर्ण श्रृंगारिक चेष्टाये भले ही दुष्यन्त से सम्बन्धित नहीं थी परन्तु न सारी चेष्टाओं का केन्द्रबिन्दु दुष्यन्त ही था ऐसा कामनायुक्त दुष्यन्त स्वयं भी अनुभव करता है -

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्यां तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पष्यति।। अ.शा. 2/2

नायिका द्वारा कुछ दूर चलकर पैरों में दर्भाङ्कुर चुभ जाने का बहाना नायक दुष्यन्त को पुनः-पुनः देखना, शाखाओं में वल्कल वस्त्र न फँसने पर भी उसको छुड़ाने के बहाने से विवृतवदना होकर पुनः दुष्यन्त पर प्रेमपूर्वक दृष्टिपात करना इत्यादि चेष्टाओं से दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला अपनी प्रेमपूरित भावनाओं को वार्तालाप के बिना ही सम्प्रेषित कर देती है।

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वीस्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद् विवृत्वदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्।। आ.शा. 2/13

इस प्रकार अन्य बहुत सारी आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से सामाजिक नाटक में आनंदानुभूति करता है।
इतना ही नही इन कायिक चेष्टाओं के माध्यम से काव्य में वर्णित मनुष्येतर पशु-पक्षी इत्यादि की आन्तरिक मनोभावों को भी सरलता से समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए प्राणों की रक्षा के लिये अत्याधिक वेग से दौड़ते हुए भयभीत मृग की शारीरिक क्रियाएँ उसके मनोभावों को व्यक्त कर देती हैं। मृग की इस शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से सम्पूर्ण दृष्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष हो जाता है। जैसा कि निम्न पद्य से स्पष्ट है-

ग्रीवाभङ्गाभिरामं महुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पष्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंषिभिः कीर्णवर्त्मा।
पष्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्या प्रयातिं।।
अभिज्ञानषाकुन्तलम् 1/7

इसी प्रकार निम्न पद्य से हाथी की स्वाभाविक क्रियाओं द्वारा हम उसके भय एवं क्रोध का अनुभव कर सकते है। जैसा कि निम्न पद्य से स्पष्ट है -

तीव्राघातादभिमुख तरुस्कन्धभग्नै
पादाकृष्टव्रततिवलया सङ्गसंजातपाषः
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं प्रविषति गजः स्यन्दनालोकभीतः।। अभि. 1/30

चतुर्विध इन अभिनयों में सभी की सत्ता महत्वपूर्ण है। नाटक में स्वाभाविक शब्दावली का प्रयोग जहाँ सामान्य अर्थ बोध के साथ-साथ कथा-वस्तु में गति प्रदान करता है तो शारीरिक अभिनय के माध्यम से सामाजिक पात्रों के आन्तरिक मनोभावों के साथ तादात्म्य की स्थिति को प्राप्त करता है। काव्य का पाठक ही नाटक का दर्शक होता है, फिर भी काव्य में अधिकांश सम्प्रेषण वाचिक माध्यम से तथा नाटक में अधिकांश सम्प्रेषण अभिनय के माध्यम से व्यक्त होता है इसलिए पाठक को दर्शक की अपेक्षा अधिक सतर्क एवं सुबुद्ध होना पड़ेगा। इस प्रकार कवियों एवं उनके काव्यों में वर्णित कायिक चेष्टाओं से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इन चेष्टाओं के माध्यम से कवि सहज ही न केवल पात्रों के आन्तरिक मनोभाव को सामाजिक तक पहुँचाने में समर्थ होता है अपितु इसके द्वारा वह काव्यार्थ को चरम कोटि (रसास्वाद) तक पहुँचा देता है। इस प्रकार कायिक चेष्टाओं से सामान्य अर्थ एवं व्यंग्यार्थ दोनों की सम्यक् प्रतीति की जा सकती है परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि कायिक चेष्टाओं के द्वारा ही सरलता से काव्य-व्यवहार किया जा सकता हैं। काव्य एवं नाटक में इन कायिक चेष्टाओं के द्वारा आनन्दानुभूति की जा सकती है परन्तु इसके द्वारा लोकव्यवहार सम्पन्न नही हो सकता। इसका प्रमुख कारण यह हैं कि काव्य में पाठक या सामाजिक दर्शक वाचिक माध्यम से सामान्य अर्थ का ग्रहण कर लेता है तथा अभिनय या कायिक चेष्टाओं के सहयोग से वह अर्थवत्त के चरमबिन्दु पर पहुँच जाता है जैसा कि हम जानते हैं साधारणीकरण की स्थिति के लिए वाग्व्यवहार आवष्यक होता है। इस प्रकार आधुनिक भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से काव्यों में वर्णित मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों की कायिक चेष्टाओं का सूक्ष्म अध्ययन करके परस्पर एक कारगर संवाद कायम किया जा सकता है। शारीरिक चेष्टाओं का यह अध्ययन व्यापक रूप से सभी प्राणियों के लिये हितकर सिद्ध होगा।